राजन ने उत्तर दिया– 'मैं अपने पाप का फल पहले भोगना चाहता हूं।' उसी क्षण वह वहाँ से गिरा और गिरगिट बन गया।

श्रीश्री बल्लभाचार्य का दार्शनिक सिद्धान्त

प्रसंगवश

अखंड भूमंडलाचार्य जगदगुरु श्रीमद्वल्लभाचार्य जी के बारे में 84,252 वैष्णोदेवी की तथा 105 निजवार्ता, थरुवार्ता में तथा श्री बैठक चरित्र इत्यादि से पता चलता है कि उनके चरणों का प्राकट्य ही दैवी जीवों के उद्धार व जगत कल्याण के लिए हुआ था, इसीलिए उन्होंने तीन बार पृथ्वी की परिक्रमा पैदल चलकर की तथा दैवी- जीवों को शरण में लेकर चौरासी स्थानों पर श्रीमद्भागवत का पारायण करके चौरासी बैठकों की स्थापना की तथा अपने दिव्य ब्रह्मवाद की स्थापना की।

मात्र 7 साल की आयु में यज्ञोपवीत धारण करने के बाद केवल 4 महीने में वेद, उपनिषद आदि शास्त्रों का पठन- पाठन करके, मात्र 11 वर्ष की अल्पायु में विजयनगर के राजा कृष्णदेव के दरबार में अपनी अद्भुत प्रतिभा के बल पर सम्पुस्थित विद्वानों व सम्प्रदानों (निर्म्नाक, गौड़ीय व राधाबल्लभी) को अकाट्य प्रमाणों से पराजित कर उन्हें निरुत्तर कर दिया था। तभी उनके आलौकिक तेज से प्रभावित होकर राजा ने 'आचार्य' पद पर प्रतिष्ठापित कर कनकाभिषेक किया, जिसका सभी आचार्यों ने प्रशंसा से अनुमोदन किया। 'आचार्य' पद पाने के बाद तीन बार भारत भ्रमण कर 'शुद्वादैत पुष्टिमार्ग' सिद्धान्त का प्रचार और प्रसार किया। आचार्य महाप्रभु बल्लाभाचार्य के दिव्य संदेश किसी जाति- विशेष या धर्म विशेष के लिये न होकर प्राणिमात्र के कल्याण के लिए हैं...

मधुराष्टक--
अधरं मधुरं वदनं मधुरं, नयनं मधुरं हसितं मधुरं,
हृदय मधुरं गमन मधुरं, मधुरधिपते राखिलं मधुरं।

महाप्रभु उच्चकोटि के दार्शनिक ही नहीं प्रवर तर्कशास्त्री भी थे। उनके द्वारा संस्थापित पुष्टिमार्ग में अनेक भक्त हुए... उनमें प्रमुख सूरदास, कुम्भनदास, परमानंददास, कृष्णदास, 'अष्टछाप' के रूप में सम्मानित हुए।

महाप्रभु का जन्म स्थान 'चम्पारण' देश का प्रभु तीर्थ है। कहते हैं कि उज्जैन की शिप्रा नदी के पीपल के पेड़ के नीचे निवास किया, यात्रा समाप्त करने के बाद तो, वह स्थान 'बैठकी' कहलाया। उज्जैन में महाप्रभु को गोपाल रूप में श्रीकृष्ण के दर्शन हुए। उनका सिद्धान्त है सख्य भाव की भक्ति करना। पुष्टिमार्ग की कई विशेषताएं हैं... वे भगवान की कृपा में विश्वास करते है, पुरुषार्थ में नहीं। बालकृष्ण की उपासना होती है। उनकी रूपासक्ति (रूप-वर्णन) की भक्ति मानी जाती है... तभी तो सूरदास पर पुष्टिमार्ग की छाप पड़ी... कृपा बिन नहीं या रसहि पावै...

तभी तो अपने परम शिष्य परमानंददास के कीर्तन के पद पर हरि! तेरी लीला की सुधि आवै। महाप्रभु आत्मविभोर होकर मूर्छित हो गये। तीन दिनों तक समाधिस्थ रहे।

आषाढ़ शुक्ल तृतीया 1587 के काशी के हनुमान घाट पर अपने दोनों पुत्रों की तथा अन्य वैष्णवजनों की उपस्थिति में अन्तिम दीक्षा दी तथा 40 दिन निराहार रहकर जल समाधि ले ली। उस वक्त मौन धारण करके परम आनन्द की स्थिति को प्राप्त हुए।

उनका दर्शन था कि 'तीन ही तत्व है ब्रह्म, ब्रह्मांड और आत्मा अर्थात ईश्वर, जगत और जीवन। ....बल्लाभाचार्य के अनुसार ब्रह्म, सत्, चित्त और आनन्द के रूप में सर्वव्यापक है। वह ब्रह्म अपने गुणों के आविर्भाव और तिरोभाव से प्रकट होता है। इसमें माया के लिए कोई स्थान नहीं है। ब्रह्म- स्वरूप, कृष्ण के अनुग्रह से ही उसकी अनुभूति होती है। यह अनुग्रह की पोषक है जिसे पुष्टिमार्ग के नाम से चिन्हित किया जाता है। इसी कारण श्रीश्री बल्लभसम्प्रदाय पुष्टिमार्ग कहलाया।'

—अंजु सिंगड़ोदिया (अग्रवाल)

प्रेरक कथाएं

भगवान की कृपा

श्री अरविंद ने कहा है—'एवरीथिंग इज पासीबुल इफ गॉड टच इज देयर।' (इस दुनिया में सब कुछ संभव है, यदि भगवान की कृपा है)। जब हम गीता के शब्दों में कहते हैं—'सदा तद्भाव भाविता' तो हम बार-बार स्वयं को याद दिलाते हैं कि हमारे अंदर उन्हीं का अंश है। परमात्मा सदैव साथ हैं। हम जितना संभव हो, साधुता धारण करके रहें। शुरुआत तो करें। जैसे ही यह भाव आता है, मल-विक्षेप आवरण घुलने लगते हैं। कष्ट आएं तो भी बिना डरे प्रतीक्षा किये आगे बढ़ते रहते हैं।

गलती की सजा

एक शराबी नशे में चूर दलदल के पास खड़ा था। हसन उधर से निकल रहे थे। उन्होंने देखा कि शराबी कभी भी दलदल में गिर सकता था। हसन बोले—'बेअकल! जरा संभल। नहीं तो ऐसा फंसेगा जो कभी नहीं निकल पायेगा।' शराबी हसन को पहचान गया। हंसकर बोला—'अपनी गलती की सजा तो मैं अकेला भुगतूंगा, पर आपने गलतियां कीं तो अपने साथ शागिर्दों को भी ले डूबेंगे।' समझदारों की जिम्मेदारियां भी बड़ी होती हैं। लोग उनसे ज्यादा अपेक्षा रखते हैं।

कथनी और करनी

एक बार रामकृष्ण परमहंस धर्मोपदेशकों को संबोधित कर रहे थे। प्रभावी धर्मोपदेश के विषय में उन्होंने कहा—'जिसके पास अपनी पूंजी नहीं, वह दूसरों को क्या बांटेगा? तुम लोग धर्म के अनुशासन में अपने को बांधो ताकि कथनी और करनी के समन्वय से ऐसे प्रवचन कर सको जिसे लोग सुनें ही नहीं अपनाएं भी।'

संयमित जीवन

स्वामी रामकृष्ण के देहावसान के बाद शिष्यगण बहुत ही दुखी हुए। उन्हें अंत:करण से दुखी देख विवेकानंद ने समझाते हुए कहा—'मित्रों! गुरुदेव ने हमें कोई सम्पत्ति तो दी नहीं है। मात्र एक संदेश देकर गये हैं कि हमें किस प्रकार संयमित जीवन जीकर लोकमंगल का कार्य करना है। हमें उनके इस संदेश को ही जन-जन तक पहुंचाना है। इसी से हम अपनी संस्कृति को पुन: जाग्रत कर साधन एकत्र कर लेंगे।' आज उसी संदेश का जादू है जो रामकृष्ण मिशन के नाम से जाना जाता है।

- संगीता मिश्र

जयदेव की कृष्ण भक्ति

बंगाल के छोटे से गांव में भोजदेव पत्नी के साथ रहते थे। उनके पुत्र का नाम था, जयदेव। दुर्भाग्य की बात है! जयदेव किशोरावस्था में ही अनाथ हो गया। वह श्रीकृष्ण का कीर्तन करता और पढ़ता। उसी गांव में साहूकार निरंजन रहता था। उसका भोजदेव पर कर्जा था। निरंजन ने सोचा, क्यों न जयदेव का घर हथिया लूं। उसने एक दस्तावेज तैयार किया और जयदेव के पास जाकर बोला-'या तो इस कागज पर सही करो या मेरा कर्ज चुकाओ।' जयदेव ठहरा मन का भोला। झट से हस्ताक्षर कर दिया। निरंजन उसके घर पर कब्जा करने लगा। तभी उसकी छोटी बेटी दौड़ती हुई आयी और बोली-'बाबा, घर में आग लग गयी।'

निरंजन झट से दौड़ा। चारों तरफ धुआं ही धुआं था। जयदेव भी साथ गया था। वह घर के भीतर के लोगों को बचाने घुस पड़ा। उसका घर में घुसना था कि आग शांत हो गयी। निरंजन ने ऐसी अलौकिक लीला देखी, तो जयदेव के चरणों में गिर पड़ा। जयदेव के प्रति उसके मन में श्रद्धा जाग उठी। वह भी जयदेव की संगत में आ गया। एक दिन जयदेव पुरी के लिए रवाना हुए। तेज गरमी थी। कहीं पानी नहीं। जयदेव प्यास से तड़पकर बेहोश हो गये। तभी एक बालक वहां आया। उसने जयदेव को हवा की, पानी पिलाया फिर दूध पिलाया। जब उनकी दशा सुधरी तो मार्ग बताया। जयदेव ने देखा, नीचे यमुना बह रही है। हर जगह पहाड़ हैं। कदम्ब के नीचे खड़े श्रीकृष्ण मुरली बजा रहे हैं। उन्हें दूध पिलाने वाला बालक दूर-दूर तक नजर न आया।

जयदेव जगन्नाथपुरी पहुंचे। वहां भी बस भजन कीर्तन। एक दिन सुदेव नामक ब्राह्मण ने जोर देकर अपनी बेटी पद्मावती के साथ उनका विवाह कर दिया। विवाह के बाद जयदेव यात्रा पर निकले। रास्ते में एक राजा ने मान मनौवल करके कुछ धन दे दिया। आगे बढ़े तो उन्हें घायल कर डाकुओं ने सब कुछ लूट लिया। उन्हें कुएं में डाल, डाकू चले गये। कुआं सूखा था। जयदेव ने उसी में कीर्तन शुरू कर दिया। तभी उधर से राजा लक्ष्मणसेन की सवारी जा रही थी। आवाज सुनकर उन्होंने जयदेव को निकाला और इलाज कराया। उनके कृष्णप्रेम और विद्वता को देखकर, राजा ने उन्हें दरबारी बना लिया। उनकी पत्नी पद्मावती भी वहीं आ गयी। पद्मावती सारा दिन भजन में लीन रहती। उनके सत्संग में रानी तथा राज परिवार की स्त्रियां भी हिस्सा लेती। कई दरबारी जयदेव से ईर्ष्या करने लगे।

एक बार जयदेव राज्य से बाहर गये हुए थे। कई दिन तक नहीं लौटे तो किसी ने हवा उड़ा दी कि उन्हें कोई शेर खा गया। पद्मावती के कानों में यह बात आयी तो हरे कृष्ण, हरे कृष्ण कहकर गिर पड़ी। राजवैद्य ने उनकी जांच की तो मालूम हुआ कि वह मर चुकी हैं।

रानी को इस घटना से बड़ा दुख पहुंचा क्योंकि उन्होंने ही पद्मावती को यह समाचार सुनाया था। सोचने लगी कहीं राजा यह न मानने लगे कि मेरे ही कारण उनकी गुरु पत्नी की मृत्यु हुई है। कुछ ही देर बाद जयदेव सही सलामत लौट आये। सभी उन्हें अचरज से देखने लगे। रानी की सखियों ने जयदेव को रानी के भय की बात बतायी। जयदेव बोले-रानी मां! से कहो, वे घबरायें नहीं। मेरी मृत्यु के समाचार से पद्मावती के प्राण निकल गये, तो अब मेरे जीवित लौटने पर उनके प्राण को भी लौटना होगा। जयदेव जी वहीं बैठकर प्रार्थना करने लगे। तभी सबने देखा कि पद्मावती की सांस चलने लगी। कुछ ही मिनट बाद वह उठ बैठीं और ऐसे कीर्तन करने लगी जैसे कुछ हुआ ही नहीं। कृष्णलीला से प्रभावित होकर जयदेव ने उनके प्रेम रस में डूबकर गीत गोविन्द की रचना की। लोगों का मानना है कि कई बार जयदेव लिखते-लिखते अटक जाते तो श्रीकृष्ण स्वयं लेखनी से पंक्ति लिखकर जोड़ देते। ऐसी थी जयदेव की श्रीकृष्ण भक्ति।

- किशन कुमार अग्रवाल

भगवान ने उन्हें विमान से स्वर्ग भेज दिया

यदुवंश के एक राजकुमार प्रतिदिन सुबह भ्रमण को जाते थे। एक दिन वह घूमने के लिए उपवन में गए। वहाँ उन्हें बड़े जोर की प्यास लगी इधर- उधर दृष्टि दौड़ाने पर उन्हें एक कुआं दिखाई दिया। वह कुएं के समीप गए। वहाँ उन्हें एक विशाल गिरगिट दिखाई दिया, जो कुएं से बाहर आने के लिए छटपटा रहा था। राजकुमार का हृदय करुणा से भर उठा। उन्होंने गिरगिट को कुएं से बाहर निकालने का बहुत प्रयत्न किया, पर नहीं निकाल सके। लाचारी की अवस्था में उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण का स्मरण किया और उनसे अपने मन की बात कही। श्रीकृष्ण ने उस गिरगिट को बाहर निकाल दिया। भगवान का स्पर्श पाते

ही वह गिरगिट देवता के रूप में परिवर्तित हो गया। उसके इस रूप को देखकर भगवान ने उससे इस रहस्य का कारण जानना चाहा कि वह कौन है तथा किसके शाप से इस योनि में आया। उसने उत्तर दिया, 'भगवन्, मैं इक्ष्वाकु का पुत्र राजा नृग हूं।' आगे उसने सविस्तार अपनी पूरी कहानी सुनाई। राजा नृग बहुत उदार और दयालु स्वभाव का था। नित्य दान-पुण्य किया करता था। न्याय से दुधारु कपिला गाएं प्राप्त कर उनके सींग सोने से मढ़वा कर और उनका शृंगार कर उन्हें नेक और विद्वान ब्राह्मणों को दान किया करता था।

एक दिन किसी तपस्वी की गाय इन गायों में आ मिली। राजकुमार इस बात से अनाभिज्ञ था। उसने इस गाय को भी एक ब्राह्मण को दान कर दिया। जब वह ब्राह्मण गाय को ले जाने लगा तो तपस्वी आकर उससे झगड़ने लगा कि यह गाय तो मेरी है, तुम कैसे ले जा सकते हो? झगड़ते- झगड़ते दोनों नृग के पास पहुंचे। उसने उन दोनों की बात ध्यान से सुनकर अनुभव किया कि अपराध तो उससे हो गया है। उसने पहले स्वामी से कहा कि वह उसे एक गाय के बदले में अनेक गाय दे देगा परन्तु वह राजी नहीं हुआ और अंत में क्रोधित और असंतुष्ट होकर वहाँ से चला गया। जब राजा नृग का अन्त समय आया तो यमराज के दूत उसे यमराज के पास ले गए। यमराज ने उससे कहा, 'तुम सत्कर्म और पाप दोनों ही किए हैं, परन्तु तुम्हारे दान और धर्म के कारण तुम्हें स्वर्गलोक प्राप्त होने वाला है। तुम पहले स्वर्ग लोक में जाना चाहोगे या पहले अपने पाप का फल भोगना चाहोगे?'

राजन ने उत्तर दिया— 'मैं अपने पाप का फल पहले भोगना चाहता हूं।' उसी क्षण वह वहाँ से गिरा और गिरगिट बन गया। प्रभु के कर-कमलों का स्पर्श पाते ही वह शाप मुक्त हो गया और भगवान श्रीकृष्ण को अपने समक्ष खड़ा देख अभिभूत होकर कह उठा, 'मैं तपस्वी ब्राह्मणों का सेवक और आपका अनन्य भक्त था। मुझे आपके दर्शनों की बड़ी अभिलाषा थी। मुझ जैसे पापी को अपने अपना साक्षात्कार करवाकर धन्य कर दिया। अब आप मुझ पर ऐसी कृपा कीजिये कि मेरा चित्त सदा आपके चरण- कमलों में ही लगा रहे।' यह कहकर राजा नृग ने भक्तिभाव से भगवान की परिक्रमा की और चरण- स्पर्श कर उन्हें प्रणाम किया। भगवान ने उन्हें विमान से स्वर्ग भेज दिया। भगवान श्रीकृष्ण ने वहाँ उपस्थित लोगों से कहा, अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष भी पराये धन को नहीं पचा सकते, फिर अभिमानी राजाओं की तो हस्ती ही क्या, जो इस पाप से मुक्त हो सकें? इस प्रकार देखा गया है कि राजा नृग जैसे परम दयालु और परोपकारी राजा को भी अपनी छोटी- सी भूल का प्रायश्चित करना पड़ा। सामान्य व्यक्ति तो भला उससे कैसे बच सकता है।

—प्रदीप कुमार धानुक

गीतामृतम्

त्रयोदशोऽध्याय:
अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रह:।।

श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव, दम्भाचरण का अभाव, किसी भी प्राणी को किसी प्रकार भी न सताना, क्षमाभाव, मन- वाणी आदि की सरलता, श्रद्धा- भक्ति सहित गुरु की सेवा, बाहर- भीतर की शुद्धि, अन्त:करण की स्थिरता और मन- इन्द्रियों सहित शरीर का निग्रह।।7।।

इस सप्ताह
व्रत/त्योहार

05.7.11 वैनायकी श्रीगणेश चतुर्थी व्रत
06.7.11 हेरा पंचमी, श्री बल्लभाचार्य वैकुण्ठगमन, कर्दमषष्ठी (बंगाल), श्री स्कंद षष्ठी व्रत
08.7.11 श्री दुर्गाष्टमी व्रत
09.7.11 कन्दर्प नवमी
10.7.11 गिरिजा पूजा, सोपपदा
11.7.11 श्री हरिशयनी एकदशी व्रत सबका, उल्टा रथ (उड़ीसा) बहुधा यात्रा

वाक्यामृतम्

- आलोचना की उपेक्षा कर पूर्ण शक्ति से उत्तम कार्य करो। **—डेल कार्नेगी**
- यदि इच्छा ही घोड़ा बन सकती तो प्रत्येक मनुष्य घुड़सवार हो जाता। **—शेक्सपीयर**
- ईमानदार होना दस हजार में एक होना है। **—अज्ञात**
- आपत्ति और कष्ट में भी बुद्धिमान उत्साह नहीं छोड़ते। **—सोमदेव**
- बिना शारीरिक उन्नति के आध्यात्मिक उन्नति असंभव है। **—श्रीरामकृष्ण परमहंस**

सद्विचार

सम्पदा को रोकें नहीं

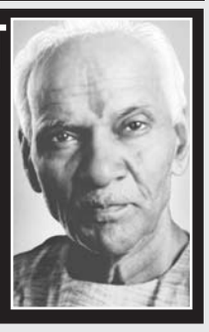

परमात्मा के अनन्त वैभव से विश्व में कमी किसी बात की नहीं। भगवान आपके हैं और उसके राजकुमार के नाते सृष्टि की हर वस्तु पर आपका समग्र अधिकार है। उसमें से जब जिस चीज की जितनी आवश्यकता हो उतनी लें और आवश्यकता निपटते ही अगली बात सोचें। संसार में सुखी और सम्पन्न रहने का यही तरीका है।

बादल अपने, नदी अपनी, पहाड़ अपने और वन खाद्यान्न अपने। इनमें से जब जिसके साथ रहना हो रहें। जिसका जितना उपयोग करना हो, करें। कोई रोकटोक नहीं है। नदी को रोक कर यदि अपना बनाना चाहेंगे और किसी दूसरे को पास न आने देंगे, उपयोग न करने देंगे, तो समस्या उत्पन्न होगी। एक जगह जमा किया हुआ पानी अमर्यादित होकर बाढ़ के रूप में उफनने लगेगा और आपके निजी खेत खलिहानों को ही डुबो देगा। बहती हुई हवा कितनी ही सुरक्षित क्यो न हो, उसे आप अपने ही पेट में भरना चाहेंगे तो पेट फूलेगा फटेगा, औचित्य इसी में है कि जितनी जगह फेफड़ों में हो उतनी ही श्वास में और बाकी हवा दूसरों के लिये छोड़ दें। मिल बांटकर खाने की यह नीति ही सुखकर है।

—पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

ऐसे थे स्वामी विजयकृष्ण गोस्वामी

पश्चिम बंगाल की धरती पर अनेक संत-महात्माओं ने जन्म लेकर देश और समाज को उपकृत किया तथा लोगों को लोक ही नहीं, अपना परलोक भी सुधारने के लिए प्रेरित किया। जीवन की नश्वरता का बोध कराया और कर्म की महत्ता को प्रतिपादित किया। शक्ति की उपासना का केन्द्र रहा बंगाल साहित्य, संस्कृति, धर्म, अध्यात्म एवं कला का भी एक जीवन्त केन्द्र रहा है, और आज भी यह धारा अविरल प्रवाहित है। एक ऐसे ही सन्त थे महात्मा श्री विजयकृष्ण गोस्वामी। बंगाल के शांतिपुर नामक स्थान में लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व सन 1841 में उनका आविर्भाव हुआ। श्री चैतन्य महाप्रभु के परम भक्त श्री अद्वैताचार्य की दसवीं पीढ़ी में श्री विजयकृष्ण गोस्वामी का जन्म हुआ था। इनके पिता श्री आनन्द किशोर ने अपने प्रथम पुत्र व्रजगोपाल के जन्मोपरान्त जगन्नाथपुरी की यात्रा दण्डवत प्रणाम करते हुए की। वहां पहुंचकर जगन्नाथजी के दर्शन कर वे भाव समाधिस्थ हो गए। उसी समय जगन्नाथ जी ने उन्हें दर्शन दिया और कहा— 'तुम वापस अपने घर लौट जाओ, मैं स्वयं तुम्हारे पुत्र के रूप में आ रहा हूं।' इसलिए माता स्वर्णमयी, जब तक जीवित रहीं श्री गोस्वामी को पुरी जाने की अनुमति कभी नहीं दी। वे कहती थी—'यह जगन्नाथ धाम से आया है, वहां जाने पर इसका शरीर छूट जायेगा।' माता- पिता की धर्म परायणता का प्रभाव बाल्यावस्था से विजयकृष्ण पर पड़ा। श्री विजयकृष्ण की शिक्षा दिव्य एवं समयानुकूल थी। वेदान्त का अध्ययन करते समय उन्होंने वेदान्त की अद्वैतवादी व्याख्या का भी अध्ययन किया और ईश्वर के निर्गुण स्वरूप को केवल सत्य माने लगे। बाद में उनका विवाह स्व. रामकुमार भादुड़ी की सुकन्या योगमाया देवी से हुआ। अध्ययन के इन्हीं दिनों में एक दिन उन्होंने देववाणी सुनी— 'परलोक की चिन्ता करो।' इसके बाद से वे शांति की खोज के लिए अत्यधिक व्यग्र हो गए। इसी समय उन्होंने चिकित्सा महाविद्यालय में प्रवेश लिया परन्तु अंतिम वर्ष की परीक्षा के पहले ही पढ़ाई छोड़ दी और ब्रह्मधर्म के प्रचार- प्रसार में लग गए।

एक दिन उन्हें फिर दैवी निर्देश मिला— 'किसी प्रकार के बंधन में रहने से धर्म लाभ नहीं होगा।' इसके बाद से उन्हें ब्रह्म समाज में मन, कर्म वचन द्वारा सत्य का अनुसरण करना असंभव प्रतीत हुआ और उन्होंने विभिन्न सम्प्रदायों के महात्माओं के साथ सत्संग प्रारंभ किया। श्री रामकृष्ण परमहंस, सिद्ध वैष्णव श्री चैतन्यदासजी, श्री भगवानदासजी, श्री तैलंग स्वामीजी और श्री गंभीरनाथजी आदि महात्माओं के सत्संग से उन्हें पुन: ईश्वर के साकार रूप पर विश्वास हो गया और वे सद्गुरु की खोज में निकल पड़े। जब वे गया के आकाशगंगा पहाड़ पर पहुंचे तब वहां सौभाग्यवश मानसरोवर वासी श्रीमत् स्वामी ब्रह्मानंद परमहंसजी ने अलौकिक रूप से प्रकट होकर श्री स्वामीजी को दीक्षा प्रदान की। साधना के दौरान श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से दिव्य भगवत प्रेम प्राप्त किया।

कालान्तर में विजयकृष्ण जी संन्यास लेने काशी में स्वामी हरिहरानंद सरस्वती के पास पहुंचे। इसके उपरान्त इनका नाम स्वामी अच्युतानंद सरस्वती रखा गया किन्तु वे अपने पूर्वनाम श्री विजयकृष्ण गोस्वामी से ही ज्यादा परिचित हुए। श्री गोस्वामी ने धर्मप्रचार के साथ- साथ श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचारित वैष्णवधर्म का पुनर्जागरण किया। दीक्षा के सम्बन्ध में इनका कहना था— यह सम्पूर्ण भगवान का दान है, जिन्हें भगवत निर्देश प्राप्त है, केवल वे ही यह दीक्षा दे सकते हैं।

सन् 1897 में गोस्वामीजी ने पुरी जाना तय किया। पुरी में उनके महाभाव अवस्था का दर्शन कर लोग अपने को धन्य समझने लगे। पुरी में इनकी बढ़ती ख्याति को देखकर स्वार्थी लोगों ने ईर्ष्या के वशीभूत हो महाप्रसाद के साथ तीव्र जहर मिश्रित कर उनके प्राणनाश की योजना बनायी। विषपान के कारण जून 1899 में महज 58 वर्ष की आयु में उन्होंने नित्य लीला में प्रवेश किया। इनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग 'अजपा साधन' कहलाता है। सद्गुरु प्रत्यक्ष निर्देश देकर जिन्हें आदेश दें वही शक्ति संचार पूर्वक यह साधन दे सकता है। जिस पद्धति से अपने आप हर समय जप होता रहे उसे अजपा साधन कहते हैं। श्वास- प्रश्वास के क्रम से सद्गुरु प्रदत्त शक्तिशाली मंत्र के जप के अभ्यास से वह श्वास के साथ मिल जाता है तब पुन: इच्छापूर्वक जप करने की आवश्यकता नहीं रहती है। श्री गोस्वामीजी की कृपाधारा गुरु परम्परा से म्लान जीवों को ईश्वर प्रेम की ओर उद्वेलित करती है। श्री गोस्वामी जी द्वारा लिखित कई पुस्तकें आज संत साहित्य की धरोहर हैं।

—एस. आनंद

शनि को सबक हनुमान जी का

शाम का समय था। सूर्यदेव अस्ताचल के समीप पहुंच चुके थे। केसरीनंदन हनुमान श्रीराम की अराधना में लीन थे। उसी समय सूर्य पुत्र शनि समुद्र तट पर टहल रहे थे। उन्हें अपनी शक्ति का अत्यधिक अहंकार था। उनकी दृष्टि हनुमान जी पर पड़ी तो उन्हें पराजित करने का निश्चय किया। सूर्यदेव की तीक्ष्णतम किरणों से शनि का रंग उस समय बिल्कुल काला पड़ गया था।

पवन कुमार के समीप पहुंच कर शनि ने अत्यंत कर्कश स्वर में कहा-'बंदर! मैं प्रख्यात शक्तिशाली शनि तुमसे युद्ध करना चाहता हूं। पाखंड त्याग कर खड़े हो जाओ।'

हनुमान जी ने विनम्रतापूर्वक पूछा-'महाराज! आप कौन हैं? आपके यहां पधारने का क्या उद्देश्य है?'

शनि ने अहंकारपूर्वक कहा -'मैं परम तेजस्वी सूर्य का परम पराक्रमी पुत्र शनि हूं। तुम्हारे बल-पौरुष की अनेक गाथाएं सुनी हैं, इसलिए मैं तुम्हारी शक्ति की परीक्षा करना चाहता हूं।'

कपिश्रेष्ठ महावीर ने उन्हें बहुत समझाया। बोले-'मैं वृद्ध हो गया हूं। युद्ध करने की शक्ति मुझमें नहीं है। मुझे अपने प्रभु श्रीराम का स्मरण करने दीजिये। आप यहां से जाकर किसी और वीर को ढूंढ़ लीजिए। मेरे भजन-कीर्तन में व्यवधान उपस्थित मत कीजिए।' परन्तु शनि नहीं मानें। उन्होंने व्यंग्यपूर्वक कहा-'तुम्हारी स्थिति देखकर मेरे मन में करुणा का संचार हो रहा है, किंतु मैं तुमसे युद्ध अवश्य करूंगा।' इतना कहकर वे बजरंगबली का हाथ पकड़ लिया और उन्हें युद्ध के लिए ललकारने लगे।

वज्रांग हनुमान ने झटक कर अपना हाथ छुड़ा लिया, परन्तु शनि हठ पर उतर आये। इस पर अंजनी कुमार हनुमान ने कहा-'आप नहीं मानेंगे' और अपनी पूंछ बढ़ाकर शनि को उसमें लपेटना शुरू कर दिया। कुछ ही क्षणों में सूर्य पुत्र शनि गर्दन तक हनुमान जी की मजबूत पूंछ में कैद हो गए। उनका अहंकार, उनकी शक्ति एवं उनका पराक्रम सब व्यर्थ सिद्ध हुए। वे सर्वथा अवश, असहाय और निरुपाय होकर उस मजबूत बंधन की पीड़ा से छटपटाने लगे, तभी शंकर-सुवन को राम सेतु की परिक्रमा का ध्यान आया। समय हो चुका था। वे उठे और दौड़ते हुए राम सेतु की प्रदक्षिणा करने लगे। शनि अब भी उनकी पूंछ के बंधन में थे।

शनि देव ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा ली, पर बंधन से मुक्त न हो सके। भक्तराज हनुमान के दौड़ने से उनकी विशाल पूंछ शिलाखंडों पर गिरती जा रही थी। वज्रांग महावीर दौड़ते हुए जानबूझ कर भी अपनी पूंछ शिलाखंडों पर पटक देते थे। शनि की बड़ी दयनीय दशा थी। उनका सिर लहूलुहान हो गया। वे पीड़ा से कराहने लगे। हनुमान जी अविराम परिक्रमा करते ही जा रहे थे, तब शनि ने अत्यंत कातर स्वर में प्रार्थना की-'हे करुणामय रामभक्त हनुमान! मुझ पर कृपा करें। अपनी उद्दण्डता का दण्ड मुझे मिल गया। आप मुझे मुक्त कर दें।'

दयामूर्ति हनुमान खड़े हो गये। बोले-'यदि तुम मेरे भक्त की राशि पर कभी न जाने का वचन दो तो मैं तुम्हें मुक्त कर सकता हूं। अगर तुमने इस वचन को कभी तोड़ा तो तुम्हें कठोरतम दण्ड दूंगा।'

शनि ने तुरंत उनकी बात स्वीकार कर ली। हनुमान जी ने उन्हें छोड़ दिया। शनि ने अपना पीड़ाग्रस्त शरीर सहलाते हुए उनके चरणों में प्रणाम किया, फिर अपनी देह पर लगाने के लिए तेल मांगने लगे।

उन्हें जो तेल प्रदान करता, उससे वे संतुष्ट होकर उसे आशीष देते। कहते हैं, इसी कारण अब भी शनि देव को तेल चढ़ाया जाता हैं।

- शिखर चंद जैन